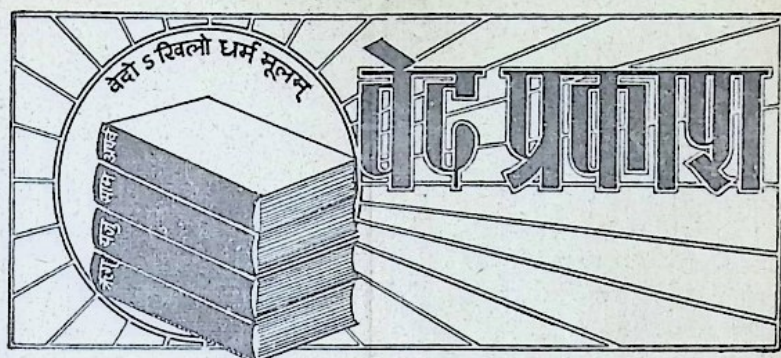




आत्मा

अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ।

अयं सज्जे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा वर्धमानः ॥

—ऋग्वेद ६।६।४

शब्दार्थ—१. हे विद्वानो ! (अयम्) यह (होता) कर्मफल-भोक्ता जीवात्मा (प्रथमः) शरीर में इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि सबसे श्रेष्ठ है ।

२. (मर्त्येषु) मरणधर्मा शरीरों में (इदम्) यह (अमृतम्) कभी नष्ट न होने-वाली अमर ज्योति है ।

३. (इमम् पश्यत) इस आत्मा का साक्षात्कार, दर्शन करो । आत्मा को जानो ।

४. (अमर्त्यः सः ध्रुवः सज्जे) मरणधर्म से रहित वह आत्मा सदा स्थिर=नित्य होकर भी विविध रूपों में प्रकट होता है ।

५. (अयम्) यह जीवात्मा (तन्वा वर्धमानः) शरीर से बढ़ता हुआ (आ निषत्तः) चींटी से लेकर हाथी और मनुष्य पर्यन्त नाना शरीरों को धारण करता हुआ सब ओर स्थित होता है ।

भावार्थ—शरीर में आत्मा सर्वश्रेष्ठ है । आत्मा के कारण ही शरीर की स्थिति है । शरीर मरणधर्मा है परन्तु आत्मा अमर है । इस आत्मा को जानने का प्रयत्न करना चाहिए । यह आत्मा कर्मों के अनुसार नाना प्रकार के शरीर धारण करके प्रकट होता है ।

—जगदीश्वरानन्द सरस्वती



प्रस्तुत अंक में प्रो० सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम० ए० गोरखपुर के कुछ लेखों का संकलन प्रकाशित किया जा रहा है । आपको ये लेख विश्वास है पसन्द आयेंगे और आप इस अंक को सम्भालकर रखना चाहेंगे ।

वैदिक-संस्कृति पर अद्वितीय ग्रन्थ

उपनिषद्-प्रकाश

उपनिषद्-प्रकाश—लेखक, विद्यामार्तण्ड प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार । प्रकाशक-विजयकृष्ण लखनपाल, लखनपाल प्राइवेट लिमिटेड, ४/२४ आसफ अली रोड, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या ५१२, बड़ा साइज, सुन्दर कपड़े की जिल्द, आकर्षक डस्ट कवर, मोटा बढ़िया कागज, मूल्य ६५ रुपया ।

उपनिषदों की व्याख्या में प्रोफेसर साहव ने दो बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे हैं । आपका उपनिषदों पर जो पहला ग्रन्थ है उसका नाम 'एकादशोपनिषद्-भाष्य' है उसकी भूमिका स्वर्गीय राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन ने लिखी थी । आपका अब जो नवीन ग्रन्थ 'उपनिषद्-प्रकाश' प्रकाशित हुआ है उसमें तथा पहले के ग्रन्थ में एक मौलिक भेद है । 'एकादशोप-निषद्-भाष्य' संस्कृत पढ़े-लिखे लोगों के विशेष काम का है । उसमें सम्पूर्ण उपनिषद् के प्रत्येक स्थल का पदच्छेद, पदार्थ, भावार्थ, व्याख्या—यह सब-कुछ दिया गया है । इस ग्रन्थ में उपनिषद् की गहराई में जाकर प्रत्येक उपनिषद् का व्याख्यात्मक विवेचन किया गया है । यह ग्रन्थ उपनिषदों की, सर्वसाधारण की समझ में आ जानेवाली, रोचक व्याख्या है । संस्कृत-भाग साथ-साथ दिया गया है, परन्तु अगर संस्कृत-भाग को छोड़कर भी पढ़ा जाय तो सारा ग्रन्थ सिलसिलेवार समझ में आ जाता है । एक तरह से आपका 'एकादशोपनिषद्-भाष्य' तथा उपनिषद्-प्रकाश—ये दोनों एक-दूसरे के पूरक ग्रन्थ हैं । इस पुस्तक की भूमिका में आप लिखते हैं—

“जब से मैंने उपनिषदों पर लिखना शुरू किया तब से 'उपनिषद्-प्रकाश' जैसे ग्रन्थ के लिखने की मुझे अन्तस् प्रेरणा होती रही, और पाठकों से माँग आती रही कि सर्व-साधारण के लिए बुद्धिगम्य व्याख्या मैं लिखूँ । पाठक चाहते थे कि ऐसा ग्रन्थ उनके हाथों आये जिसका वे सरल, सम्बद्ध भाषा में प्रतिदिन पाठ कर सकें । उसी कमी को यह ग्रन्थ पूरा करता है । इसे ऐसा लिखा गया है जिसे पढ़कर मुझे स्वयं आनन्द आता है । मैं अपने ही लिखे इस ग्रन्थ को कई बार पढ़ा करता हूँ और ऋषियों की वर्णन शैली का आनन्द उठाया करता हूँ क्योंकि यह शैली मेरी नहीं, उपनिषदों के ऋषियों की शैली है ।”

“मेरी सदा यह सम्मति रही है कि वैदिक विचारधारा को समझने के लिये जितना वस्तुजगत् उपनिषदों में मिलता है, उतना अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं । उपनिषदों में जिस विषय को उठाया गया है उसका उनमें सिलसिलेवार वर्णन है । आध्यात्मिक रहस्यों को सर्व-साधारण तक पहुँचाने के लिये इन्हें ऐसी सरल भाषा में लिखा गया है कि वह आसानी से समझ पड़ जाती है । गहन विषय को कथानकों, अलंकारों से ऐसे जड़ा गया है कि पढ़ते-पढ़ते मन नहीं ऊँचता ।”

प्रो० सत्यव्रत जी ने इस ग्रन्थ में ग्यारहों उपनिषदों पर रोचक ढंग से व्याख्या लिखी है । उनकी यह व्याख्या आर्यसमाज के प्रायः सभी पत्रों में प्रकाशित हो चुकी है । पाठकों की यह प्रबल इच्छा थी कि उनकी ये व्याख्याएँ पुस्तकाकार प्रकाशित हो जाएँ ताकि वे स्थिर साहित्य का रूप धारण कर लें । आर्यजगत् की यह इच्छा इस सुन्दर ग्रन्थ के प्रकाशित होने से पूर्ण हो गई है ।

हमारी तो यह सम्मति है कि उपनिषदों की इतने रोचक ढंग से अबतक कोई व्याख्या हमने नहीं देखी । प्रो० सत्यव्रत जी ऐसा उत्तम ग्रन्थ आर्य-जगत् को देने के कारण आर्यसमाज के ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति के प्रेमियों के घन्यवाद के पात्र हैं ।

—सच्चिदानन्द शास्त्री
वरिष्ठ उपमन्त्री (सार्वदेशिक सभा)

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३०, अंक ११]

वार्षिक मूल्य : पाँच रुपये

[जून, १९८१

सम्पा० : विजयकुमार

आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

सत्य

—सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम०ए०

१. ऋतस्य पथा प्रेत ।—यजुर्वेद, ७-४५ सत्य के पथ पर चलो ।

२. अहमनृतात् सत्यमुपैमि ।—यजु० १-५ । मैं असत्य से बचकर सत्य के पास जाता हूँ ।

३. सत्येनोर्ध्वस्तपति ।—अथर्ववेद १०-८-१९ । मनुष्य सत्य से ऊँचा, उदीयमान होकर तपताज गमगाता जाता है ।

४. ऋतं वोचे नमसा ।—ऋग्वेद ४-५-११ ।

मैं शालीनता और नम्रता के साथ सत्य कहता हूँ ।

स्वामी दयानन्द महाराज ने आर्यसमाज के दस नियमों में चौथा नियम रखा है—“सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए ।”

बालको, सत्य की महिमा अपरम्पार है ! कवीर ने कहा है—

सांच बराबर तप नहीं, भूठ बराबर पाप ।

जाके हिरदै सांच है, ता हिरदै हरि आप ॥

सत्य के समान दूसरा तप नहीं और असत्य के समान दूसरा पाप नहीं । जिस के हृदय में सत्य बसता है, उसके हृदय में समझो स्वयं प्रभु का निवास है । सन्त चरणदास कहते हैं—

भूठे को तजि दीजिए,

सांचे में करि मोह ।

असत्य को तू छोड़ दे और अपना आश्रय स्थान सत्य में बना ले ।
दादू दयाल कहते हैं—

‘दादू’ कथणी और कुछ,
करणी करै कुछ और ।
तिनसे मेरा जीव डरै,
जिनका ठीक न ठौर ॥

कहते तो कुछ हैं और करते कुछ और ही हैं, ऐसों से मैं बहुत ही डरता हूँ, जिनकी बात का ठीक ठिकाना नहीं ।

सत्य चरित्र या सदाचार का प्रथम और अनिवार्य अंग है । ‘नहि सत्यात्परो धर्मः’ सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं । सत्य मानना, सत्य बोलना और सत्य ही करना मनुष्य का स्वभाव बन जाना चाहिए । याद रखो, सत्य-वादी का सर्वत्र मान और विश्वास होता है ।

स्वामी दयानन्द का सम्पूर्ण जीवन सत्य की कहानी है । उनके जीवन की कुछ घटनाएँ सुनो—

स्वामी दयानन्द सत्य के प्रेमी थे । एक बार की बात है बरेली में रईस लाला लक्ष्मीनारायण की कोठी पर स्वामी जी ने आसन जमाया, वहाँ उनके व्याख्यान भी होते थे । व्याख्यानों में सभी ऊँचे राज्याधिकारी आया करते थे । स्वामी जी बिना भय और लिहाज के सत्यधर्म का प्रकाश करते थे । स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज जो उन दिनों मुन्शीराम नाम से प्रसिद्ध थे, उन व्याख्यानों में आया करते थे । उन्होंने वहाँ की घटना का आँखों देखा हाल इस प्रकार बताया है—

एक रोज व्याख्यान देते हुए स्वामी जी महाराज पुराणों की असम्भव बातों का खण्डन करते-करते उनकी कदाचार शिक्षा की चर्चा करने लगे । उस समय वहाँ पादरी स्काट, मिस्टर रेड कलक्टर जिला और मिस्टर एडवर्ड साहब कमिश्नर डिवीजन आदि पन्द्रह-बीस अंग्रेजों के साथ विद्यमान थे । स्वामी जी ने पुराणों की पंच कुमारियों की चर्चा करते हुए एक-एक के गुण वयान करने आरम्भ किये और पौराणिकों की बुद्धि पर शोक प्रकाश किया तथा बताया कि द्रौपदी के पाँच पति कराके उसे कुमारी करार दिया उन्होंने यह भी कहा कि कुन्ती, तारा, मन्दोदरी आदि को कुमारी कहना पौराणिकों की आचार सम्बन्धित शिक्षा को निकम्मा सिद्ध करता है । स्वामी जी की कथन शैली इतनी रोचक थी कि श्रोता उठने का नाम नहीं लेते थे । इस कथन को समाप्त करने के बाद स्वामी जी महाराज ने कहा—यह तो रही पुराणियों की लीला, अब किरानियों (ईसाइयों) की लीला सुनो । यह ऐसे भ्रष्ट हैं कि कुमारी के बेटा पैदा होना बताते हैं । फिर दोष सर्वज्ञ-बुद्धस्वरूप परमात्मा पर लगाते और ऐसा पाप करते हुए तनिक भी लज्जित नहीं होते । इतना कहना था कि कलक्टर और कमिश्नर के चेहरे मारे गुस्से

के लाल हो गये। स्वामी जी महाराज उसी तरह बोलते रहे। अगले दिन कमिश्नर ने ला० लक्ष्मीनारायण को अपनी कोठी पर बुलाया और कहा कि अपने पण्डित को कह दो कि बहुत सख्ती से काम न लिया करें। खजांची साहब अगले दिन स्वामी दयानन्द के पास पहुँचे। वहाँ बात कहने की उनकी हिम्मत नहीं हो रही थी, अतः कभी सिर खुजलाते, कभी गला साफ करते। इस प्रकार पाँच मिनट बीत गये पर वे कुछ कह न सके। किसी तरह अन्त में बोले, महाराज अगर सख्ती न की जाए तो क्या हर्ज है? इससे अंग्रेज भी नाराज न होंगे और असर भी अच्छा पड़ेगा।

स्वामी जी ने हँसकर, कहा, 'अरे, बात क्या थी, जिसके लिए गिड़-गिड़ाता है और हमारा इतना समय खराब किया, साहब ने कहा होगा तुम्हारा पण्डित सख्त बोलता है, कारखाने बन्द हो जाएँगे यह होगा, वह होगा। अरे भाई, मैं हवा तो नहीं तुम्हें खा जाऊँगा, जो उसने तुम्हें कहा तू मुझ से सीधा कह देता, व्यर्थ इतना समय क्यों गँवाया।'।

स्वामी श्रद्धानन्द ने उस दिन शाम के व्याख्यान का वर्णन करते हुए लिखा है मैंने केशवचन्द्र सेन, लाल मोहन घोष, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, एनीबी-सेन्ट और अन्य बहुत से प्रसिद्ध व्याख्याताओं के भाषण सुने हैं और वह भी उनकी बढ़ती के समय। परन्तु उस दिन आत्मा के स्वरूप पर स्वामी जी के व्याख्यान का असर अवर्णनीय है। स्वामी जी ने सत्य के बल पर बोलते हुए कहा—लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो। कलक्टर क्रोधित होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा। गवर्नर पीड़ा देगा। अरे, चक्रवर्ती राजा क्यों न अप्रसन्न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे। इसके बाद उस उपनिषद् के वाक्य को पढ़कर जिसमें लिखा है कि आत्मा को न कोई हथियार छेद सकता है और न उसे आग जला सकती है, गर्जती हुई आवाज में बोले, यह शरीर तो अनित्य है, इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना, असत्य बोलना और सत्य को छिपाना व्यर्थ है। इसे जिस मनुष्य का जी चाहे नष्ट कर दे। फिर चारों ओर तीक्ष्ण आँखों की ज्योति डालकर सिंहनाद करते हुए फरमाया कि मुझे वह शूरमा पुरुष दिखलाओ जो यह दावा करता है कि मेरी आत्मा का नाश कर सकता है। जब तक ऐसा वीर इस संसार में दिखाई नहीं देता, मैं यह सोचने को भी तैयार नहीं हूँ कि मैं सत्य को दबाऊँगा या नहीं?"

एक दूसरी घटना सुनिए। फरुखाबाद में ज्वालाप्रसाद नाम का शराबी और मांसाहारी ब्राह्मण पोस्टमास्टर था। एक वामपन्थी उसे पालकी में बैठाकर स्वामीजी के पास छोड़ गया। वह व्यक्ति नशे में गाली बकने लगा। स्वामीजी के वहाँ से जाने के बाद भक्तों ने उसकी मरम्मत कर दी। उसके बाद एक लाला जगन्नाथ ने स्वामीजी से कहा, 'यदि वह न्यायालय में अभियोग चलाएगा तो क्या होगा?' स्वामी जी ने निर्लिप्त भाव से कहा, हम तो

सत्य ही कहेंगे वह चाहे किसी के अनुकूल पड़े या प्रतिकूल ? यह भी सत्य का एक उदाहरण है ।

महर्षि दयानन्द को बड़े से बड़ा प्रलोभन भी सत्य से नहीं डिगा सकता था । जिस समय स्वामी जी महाराज उदयपुर की जनता में सद्धर्म का प्रचार कर रहे थे, एक दिन वहाँ के महाराजा सज्जनसिंह अकेले में ऋषि दयानन्द से बोले, 'महाराज । यदि आप देशकालोचित समझकर मूर्तिपूजा का खण्डन करना छोड़ दें तो अति उत्तम हो, क्योंकि आप जानते हैं कि यह रियासत एकलिंगेश्वर महादेव के अधीन चली आती है । यदि आप स्वीकार करें तो इस मन्दिर के महन्त बन सकते हैं । वैसे तो यह राज्य भी उसी मन्दिर को समर्पित है, परन्तु मन्दिर के नाम जो राज्य का भाग लगा हुआ है उसकी भी लाखों की आय है । उसपर आपका अधिकार हो जाएगा ।

ऋषि को क्रोध नहीं आता था, परन्तु अपने शिष्य की इस बात से वह भुँभुला उठे । ऋषि ने उत्तर दिया, महाराजजी ! आप मुझे लालच देकर सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की अवज्ञा करने पर उद्यत कराना चाहते हैं । ये आपके मन्दिर और यह आपकी छोटी-सी रियासत, जिससे मैं एक दौड़ में बाहर जा सकता हूँ, मुझे सत्य और धर्म से च्युत नहीं कर सकती । आप यह निश्चय समझ लें कि मैं परमात्मा और वेद की आज्ञा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकता ।

स्वामी दयानन्द के शिष्य स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन भी सत्य की परिधि पर घूमता था । उन्होंने अपना नाम श्रद्धानन्द इसी भावना से रखा । श्रद्धा का अर्थ है सत्य को धारण करना । अतः सत्यं धारयतीति श्रद्धा, अर्थात्—जो सत्य को धारण करें वह श्रद्धा है । उन्होंने सत्य को धारण करने का प्रयत्न किया । जो कहा, उसे पूरा किया । एक घटना है—

रात का समय है । सर्वत्र निस्तब्धता और शान्ति का साम्राज्य छाया हुआ है । एक घर में एक स्त्री अपने पति के इतनी देर में भी अपने घर न आने से अत्यन्त व्याकुल होकर कभी अन्दर जाती है और कभी बाहर दरवाजे तक आकर दूर दृष्टि फेंकती है । किसी को आता न देखकर उसकी व्याकुलता निरन्तर बढ़ रही है । इतने में शराब के नशे में चूर लड़खड़ाता हुआ व्यक्ति आकर घर के दरवाजे पर घड़ाम से गिर पड़ता है । स्त्री वहाँ भट से पहुँच जाती है और हाथ का सहारा देकर सेवा-शुश्रूषा में भट से लग जाती है । उसके मुँह से शराब की दुर्गन्ध आ रही है पर इसकी उसे कुछ परवाह नहीं । वह अपना पतिसेवा धर्म निभा रही है । यह उसके अपने पति लाला मुन्शीराम (बाद में स्वामी श्रद्धानन्दा) हैं । होश में आने पर अपनी पत्नी की कर्तव्य पारायणता, धर्मप्रियता एवं सेवा भाव को देखकर उनका हृदय परिवर्तन हो जाता है । उसी क्षण शराब न पीने का प्रण करते हैं । शराब के सब पात्र उठाकर फेंक देते हैं । मांस की प्यालियाँ पटक दी जाती

हैं। उनके जीवन का नया अध्याय शुरू होता है और वे मांस, शराब आदि का सेवन न करने का प्रण करते हैं।

डिगो न अपने प्रण से।

तो कुछ पा सकते हो।

तुम भी ऊँचे उठ सकते हो,

छू सकते हो नभ के तारे।

उनके जीवन की प्रतिज्ञा पालन की एक और घटना सुनो—

२६ अगस्त १८९८ ई० का दिन था, स्वामी श्रद्धानन्द ने प्रतिज्ञा की कि गुरुकुल खोलने के लिए जब तक तीस हजार रुपये एकत्र न कर लूंगा तब तक घर वापस न आऊंगा, सत्यप्रतिज्ञ अपने निश्चय से हटता नहीं। शरीर उसके लिए बहुत महत्वपूर्ण नहीं। वह कहता है, 'कार्य वा साधये यं देहं वा पातयेयम्' या तो कार्य सिद्ध करूंगा या शरीर को समाप्त कर दूंगा। स्वामी श्रद्धानन्द भी यह निश्चय करके घर से निकल पड़े। उनके निश्चय को सुनकर परिवारवालों ने चिन्ता प्रगट की, मित्रों और शुभ हितैषियों ने ऐसा न करने को समझाया, हितचिन्तकों ने इसे मूर्खतापूर्ण कदम माना, विरोधियों ने कार्यपूर्ति असम्भव समझ कर खिल्ली उड़ाई, पर, वीर अपने वचन का पालन करता हुआ घर से निकल पड़ा। कहते हैं 'रामो द्विर्नाभिभाषते' राम दो बातें कहना नहीं जानता। हम कहते हैं, 'श्रद्धानन्दो द्विर्नाभिभाषते' श्रद्धानन्द दो बातें कहना नहीं जानता। वे निकल पड़े अपनी धर्मयात्रा पर। उस दिन भी वे अपने मकान पर नहीं ठहरे। उसके सामने सड़क के पार दूसरी ओर आर्यसमाज मन्दिर में ही ठहरे और पूरे नौ मास बाद उनकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। आज तीस हजार रुपये बड़ी चीज नहीं, परन्तु उस युग में यह दुष्कर कार्य था। उनकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। गुरुकुल बना। और आज वहाँ से निकले हजारों छात्र इस कुल माता के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए शान से कह रहे हैं—

जिसकी चरण धूलि ने पाला,

जहाँ किया विद्या मधुपान।

उस प्यारी कुल माता को है,

मेरा बारम्बार प्रणाम।

बालको असत्याचरण भी असत्य ही है। तुम परीक्षाएँ देते हो। परीक्षाओं में अनुचित साधनों का अपनाना भी असत्याचरण है। इससे वचन का प्रयत्न करना चाहिए। महात्मा गांधी जी ने अपनी आत्म-कथा में एक घटना लिखी है—

हाईस्कूल के प्रथम वर्ष में शिक्षा-विभाग के इन्स्पेक्टर निरीक्षण करने आये। उन्होंने पहली कक्षा के लड़कों को पाँच शब्द लिखाये। उनमें से एक शब्द की स्पेलिंग मैंने गलत लिखी। शिक्षक ने मुझे अपने बूट की नोक मार

कर चेताया, पर मैं क्यों चेतने लगा ? मुझे यह ख्याल ही न आ सका कि शिक्षक मुझे सामनेवाले लड़के की पट्टी देखकर स्पेलिंग सुधारने का इशारा कर रहे हैं। मैं तो यह समझता था कि शिक्षक इस बात की निगरानी रख रहे हैं कि हम एक दूसरे की नकल न करें। शिक्षक ने बाद में मेरी मूर्खता समझाई, लेकिन मेरे मन पर उस समझाने का कोई असर न हुआ। मैं दूसरों की कापी से नकल करना कभी न सीख सका।

बालको, स्वामी दयानन्द, श्रद्धानन्द और गांधी की भाँति सत्याचरण-शील सत्यप्रतिज्ञ बनो और प्रलोभन के समय भी सत्य छोड़नेवाले न बनो। भारत के इतिहास में राजा हरिश्चन्द्र इसी सत्य के कारण राज-पाट छोड़कर सत्य हरिश्चन्द्र बने। महाराज युधिष्ठिर भी सत्यवादी थे। एक बार असत्य का भ्रम उत्पन्न करने के कारण इनकी महिमा को धक्का लगा।

इसलिए बालको। कभी भूलकर भी झूठ न बोलो। खेल या विनोद में भी असत्य भाषण न करो। माता-पिता, भाई-बहिन, गुरु-सहपाठी, सखा, सेवक, सबसे सत्य बोलो, सत्य बोलने वाले के हृदय में प्रभु का निवास होता है। सत्य प्रेमी को सब चाहते हैं, सब उससे स्नेह करते हैं। सत्यवादी लोक और परलोक का विजेता होता है। सत्यवादियों का सर्वत्र मान और विश्वास होता है। सत्यवादी की विद्या, लक्ष्मी, धी और सम्पदा निरन्तर बढ़ती है। सत्य तुम्हारा स्वभाव हो, आचरण हो, क्रिया हो, 'विदेह' के शब्दों में—

सत्य से बनते उच्च महान्।

सत्य से मिलते हैं भगवान् ॥

चरैवेति-चरैवेति, चलते चलो-चलते चलो

संसार में सुस्त और निकम्मे आदमी किसी प्रकार की कोई उन्नति नहीं कर सकते। जो लोग ढीले-ढाले, आलसी, कामचोर और प्रमादी होते हैं वे सदा दीन-हीन और दरिद्र होते हैं। सब प्रकार के धन उन्हीं को प्राप्त होते हैं जो प्रत्येक कर्त्तव्य कर्म के करने में सदा सब से आगे रहते हैं। जो सदा सतर्क और सावधान रहते हुए अवसर पर आगे बढ़ते हैं वे ही उचित अवसर पर उचित लाभ भी पाते हैं। आगे बढ़ने के लिए स्वावलम्बन आवश्यक है। दूसरे के आश्रित रहनेवाले अपने कार्य के लिए दूसरों का मुख ताकने वाले, दूसरे के सहारे जीनेवाले में न तो उत्साह होता है, न साहस। इसलिए ज्ञान के साथ-साथ परिश्रम को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। विदुर-नीति में सफल जीवन के लिए आगे बढ़ने के लिए कुछ चीजें बताई हैं।

उद्यमः साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः।

पडेत यत्र विद्यन्ते तत्र देवः सहायकृत् ॥

अर्थात् उद्यम, साहस, धीरज, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम । ये छह गुण जहाँ रहते हैं, वहाँ भगवान् सहायक होता है ।

एक कथा सुनिए । एक व्यक्ति था बहुत निर्धन । बड़ा परिवार था । खाने, पीने, पहनने, रहने में बहुत कष्ट होता था । जब कष्ट बहुत बढ़ गया तो उन लोगों ने सोचा किसी दूसरे स्थान पर चलकर व्यापार या नौकरी करें । अगले दिन ग्राम से चल पड़े । रास्ते में रात हो गई । एक वृक्ष के नीचे डेरा डाल दिया और पिता ने बेटे से कहा, “बेटा ! जाओ, पास के वन से कुछ लकड़ियाँ ले आओ ताकि आग तो जलाएँ ।

बड़ा बेटा चलने लगा तो छोटा भाई बोला, “इन्हें मत भेजो मैं जाकर लाता हूँ ।”

उससे छोटे ने कहा नहीं पिताजी, मैं लाता हूँ । पिता ने कहा, “अच्छा बेटो ! सभी कार्य करो । एक लकड़ी लाए, दूसरा पानी, तीसरा पत्थर लाकर चूल्हा बना ले ।”

सब मिलकर कार्य करने लगे । जब लकड़ियाँ आ गई । आग जली, पानी आ गया, सब कुछ ठीक हो गया तब उस पेड़ पर रहनेवाला पक्षी हँसा और बोला, “अरे भोले लोगो, सब कुछ तुम ले आये, परन्तु खाने को तो कुछ है नहीं । पकाओगे क्या ? खाओगे क्या ?”

बालको, वैसे पक्षी तो बोलते नहीं हैं, परन्तु समझाने के लिए यह कथा कही गई है । पक्षी की बात सुनकर लड़के ने ऊपर देखा और कहा, “ठहर, तुम्हें पकड़ेंगे और भूनकर खायेंगे ।

पक्षी डरकर बोला, “मुझे मत खाना मेरे साथ चलो एक स्थान दिखाता हूँ, जहाँ तुम्हें सब-कुछ मिल जाएगा ।”

वे सब चले । एक स्थान पर पहुँचकर वह बोला, “इस स्थान को खोदो ।”

उन लोग ने खोदा तो देखा नीचे एक बहुत बड़ा कोष है । सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात सभी कुछ इसमें हैं । उस दौलत को उन्होंने निकाल लिया । घर आये । पड़ौसी ने यह दशा देखी तो पूछा “अरे, तुम यह एक ही रात में इतने सम्पत्तिशाली कैसे हो गये ?”

उन्होंने पड़ौसी को सब बात सुनाई । वे भी उस पेड़ के नीचे पहुँचे । वहाँ डेरा डाला । पिता ने पुत्र से कहा बेटा, “जाओ थोड़ी लकड़ियाँ ले आओ ।”

पुत्र चिढ़कर बोला, “छोटे को क्यों नहीं कहते उसकी टाँगें टूट गई हैं क्या ?”

पिता ने छोटे को कहा, वह बोला, “मैं तो बहुत थक गया हूँ । मुझसे चला नहीं जाता । दूसरों को क्यों नहीं कहते ?”

पिता ने दूसरों से कहा । पर, कोई न गया । अन्त में उसकी पत्नी जाने लगी तो पति ने कहा, 'अरे' तू कहाँ जाएगी, बैठी रह । कहीं हाथ-पाँव तोड़कर आ जाएगी । इस प्रकार जब कोई नहीं गया तो वहाँ न चूल्हा बना, न लकड़ी आई, न पानी आया, कुछ भी नहीं आया । पक्षी ने यह देख कर कहा, अरे, तुम विचित्र लोग हो । लकड़ी नहीं, पानी नहीं, खाने का सामान नहीं, तब क्या भूखे रहोगे ? खाओगे क्या ?

लड़का बोला, "तुझे खायेंगे ।" पक्षी हँसा और बोला, "आराम से बैठे रहो । मुझे खानेवाले चले गए । तुम आपस में ही फूटे बैठे हो । तुमसे कुछ भी नहीं होगा । यह कहकर वह वहाँ से चला गया ।

यह है एकता और पुरुषार्थ न रहने का परिणाम । जो लोग परिवार में मिलकर रहते हैं, उन्हें निश्चित रूप से सम्पत्ति मिलती है । सुख मिलता है । जो मिलकर नहीं रहते, उन्हें असफलता के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता ।^१

याद रखो, समृद्धि का मूलमंत्र-एकता और पुरुषार्थ है । बालको, वेद कर्म करने का उपदेश देते हैं, उपनिषदें कर्म करने की शिक्षा देती हैं, गीता और मनुस्मृति कर्म का पाठ पढ़ाती हैं । यह सभी धर्म-ग्रन्थ पुरुषार्थ के साथ-साथ एकता और संगठन की शिक्षा दे रहे हैं । पर, इन शिक्षाओं को जीवन में न उतारने के कारण हमारे देश का ह्रास चरम सीमा पर पहुँच चुका है । तुम्हें राष्ट्र-निर्माण, विश्वोत्थान, धर्म-संस्थापन, संस्कृति-सम्पादन, चरित्र-निष्पादन, ऐश्वर्य सृजन और अनेक सुचरन के कार्य करने के लिए "चरैवेति चरैवेति" का लक्ष्य अपने सामने रखना होगा । तुम्हें अपने को ऐसा बनाना होगा कि राष्ट्र के विविध क्षेत्रों में और विश्व के तुमुल संघर्षों में तिलभर भी पीछे न हटो । याद रखो एकता और पुरुषार्थ में ऐसी शक्ति है कि इनके द्वारा मनुष्य जीवन में निरन्तर आगे ही आगे बढ़ता चला जाता है, सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को जीत लेता है । चरैवेति चरैवेति चले चलो, चले चलो ।

ओं क्रतो स्मर

है जीवात्मन् ! तू 'ओ३म्' का स्मरण कर

एक कहानी मैंने पढ़ी है । सुन्दर है । बालको, तुम्हें वह कहानी सुनाता हूँ ।

एक महात्मा थे । उनके अनेक शिष्य थे । महात्मा बड़े प्रेम से अपने शिष्यों को कहानियाँ सुना-सुनाकर उत्तम शिक्षायें दिया करते थे । एक दिन उन्होंने यज्ञ महिमा अपने शिष्यों को बतलाई और कहा कि यज्ञ में सब-कुछ समाया हुआ है । यह समझाने के बाद एक शिष्य से कहा कि जाओ, जाकर बाजार से ये सामान ले आओ । शिष्य गया । वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते

सामग्री की वस्तुओं का नाम भूल गया। उसने दुकानदार को पैसा दिया और कहा 'इस पैसे का सब कुछ' दे दो दुकानदार असमंजस में पड़ा पर वह समझदार और विचारवान् था। उसने कागज की एक पुड़िया में थोड़ी-सी मिट्टी रख दी और कहा यह सब-कुछ है। इसे ले जाओ। आम का वृक्ष इसी में से मिठास, नींबू खटास, नीम कड़वाहट, मिर्च चरपराहट ले लेती है। इनमें सब प्रकार के रस, सब प्रकार के व्यञ्जन हैं। तो ऐसा ही है प्यारा 'ओ३म्' नाम। इसमें सब कुछ समाया है। संपूर्ण संसार का ज्ञान-विज्ञान इसमें है। इसलिए उपनिषद्कार कहता है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति,
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति,
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥

अर्थात्—समस्त वेद जिसका प्रतिपादन करते हैं, समस्त तप जिसे बतलाते हैं, अर्थात् जिसके लिए किये जाते हैं, जिसको प्राप्त करने के लिए साधकगण ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करते हैं वह पद मैं संक्षेप से बतलाता हूँ, वह है 'ओ३म्' ।

प्रभु के गुण वाचक और कर्मवाचक नाम असंख्य हैं, परन्तु ईश्वर का मुख्य नाम 'ओ३म्' है। 'ओ३म्' सब में है और सर्वत्र है। 'ओ३म्' सर्व-व्यापक और सर्वज्ञ है। 'ओ३म्' सर्वाश्रय और सर्वाधार है। 'ओ३म्' अजर और अमर है। 'ओ३म्' सर्वशक्तिमान् निराकार और अरूप है। 'ओ३म्' हमारे विचारों, कर्मों और भावों को जानता है और उसके अनुसार फल देता है। 'ओ३म्' न्यायकारी और दयालु है। 'ओ३म्' अजन्मा और अनन्त है। 'ओ३म्' प्रत्येक परिस्थिति में, प्रत्येक क्षण अपनी रक्षा का वरद हस्त हम पर रखता है। उसे 'ओ३म्' कहते ही इसलिए हैं कि वह सदा हमारी रक्षा करता रहता है। संस्कृत में 'अव रक्षणे' धातु है, उससे 'ओ३म्' शब्द बनता है। इसका अर्थ है रक्षा करनेवाला। एक कहानी सुनाता हूँ कि परमेश्वर हमारी किस तरह रक्षा कर रहा होता है। सुनो—

एक बार एक राजा अपने मन्त्री के साथ शिकार के लिए जंगल में निकल गया। चलते-चलते काँटोंवाली झाड़ी में उसके कपड़े उलझ गये। हाथ से वस्त्र को सुलझाने का यत्न किया तो अंगुली में बड़ा घाव हो गया। रक्त बहने लगा। राजा कराहने लगा। मन्त्री ने पट्टी बाँधते हुए कहा, 'कोई बात नहीं, प्रभु जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं !'

राजा मन्त्री की बात सुनकर क्रुद्ध हो गया और उसने कहा—मैं पीड़ा से परेशान हूँ और आप कह रहे हैं, 'ईश्वर जो करता है, अच्छा करता है। अतः मन्त्री महोदय आप अपना रास्ता लीजिए। मैं ऐसे व्यक्ति के साथ से अकेला ही अच्छा।' Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

मन्त्री ने कहा—‘ईश्वर जो करता है, अच्छा ही करता है।’ जो आपकी आज्ञा, मैं अपना रास्ता लेता हूँ। मन्त्री चला गया।

राजा अकेला चल पड़ा। वह दूसरे राजा के राज्य में पहुँच गया। वहाँ देवी पर मनुष्य की बलि चढ़ाई जाने वाली थी। सिपाही किसी पुरुष की तलाश में थे। राजा मिल गये। सुन्दर है, शरीर अच्छा है। बलि के लिए उपयुक्त है कहकर राजा को स्नान कराया जाने लगा तो पुजारी ने राजा की कटी हुई अंगुली को देखा और बोल पड़ा—अरे, यह तो अंग-भंग है। इसकी बलि नहीं चढ़ाई जा सकती।’

राजा बच गया। उसे अब समझ में आ गया कि मन्त्री ने जो कहा था, प्रभु जो करते हैं, अच्छा करते हैं, वह ठीक है। यदि अंगुली में घाव न होता तो आज मृत्यु निश्चित थी। अब राजा ने मन्त्री को खोजा, उसे आदर से बुलाया और कहा—‘आपने तो मेरी अंगुली कटने पर बड़े पते की और मर्म की बात कही थी, मैं ही अल्पबुद्धि समझ न पाया। इसी घाव के कारण मैं मौत के मुख से बच पाया हूँ। परन्तु मन्त्रिवर, मैंने जब डाँटकर आपको निकाल दिया, इसमें प्रभु ने आप की कौन-सी भलाई देखी? आपने उस समय भी यही कहा—‘प्रभु जो करते हैं वह अच्छा करते हैं।’

मन्त्री ने मुस्कराते हुए कहा—‘यह तो और भी अधिक अच्छा हुआ। यदि आपने मुझे निकाला न होता तो मैं आपके साथ रहता और आपके साथ सिपाही मुझे भी तो पकड़ ले जाते। आप तो घायल होने से छूट जाते। परन्तु मेरा अंग-भंग न होने से मुझे बलि का बकरा बनना पड़ता। मेरे ऊपर तो प्रभु ने बहुत ही कृपा की। मुझे घायल भी नहीं किया और मृत्यु से भी बचा लिया। इसलिए प्रभु जो करते हैं, अच्छा करते हैं। उसमें मानव कल्याण होता है। हमारी दृष्टि छोटी है, प्रभु की आँखें बहुत दूर-दूर तक देखती हैं।

तुम्हारी चाही में प्रभु है मेरा कल्याण।

मेरी चाही मत करो, मैं मूर्ख नादान ॥

इसलिए बालको, ईश्वर भक्त बनो। ईश्वर भक्ति सब रोगों की अचूक दवा है। संसार के सभी महापुरुष, ऋषि-महर्षि ईश्वर भक्त हुए हैं। राम, कृष्ण, प्रताप, शिवा ईश्वरभक्त थे। गांधी ने ईश्वर का नाम लेते हुए प्राण छोड़े। दयानन्द ने ‘ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो’ कहते हुई अन्तिम निश्वास छोड़ा। स्वामी श्रद्धानन्द ने प्रभु का नाम स्मरण करते हुए अपने प्राण त्यागे। इसलिए तुम भी ‘ओ३म्’ का नाम लेते हुए ग्राम, नगर, वन, पर्वत, समुद्र कहीं भी विचरो सर्वत्र तुम्हारा कल्याण होगा। विश्वास रखो ‘ओ३म्’ सर्वत्र तुम्हारे साथ है। सुख में ‘ओ३म्’ का स्मरण करो, दुःख न होगा। दुःख में ‘ओ३म्’ का स्मरण करने से कष्ट दूर होगा। सुख में,

सोते-जागते, लिखते-पढ़ते, खेलते-कूदते, खाते-पीते, ओ३म् का ध्यान रखो, तुम्हारा कल्याण होगा ।

ओ३म् का ले नाम पंछी ।

ओ३म् का कर काम पंछी ॥

वीर माता

मातृदेवो भव ।

माता को देवता समझकर उसकी पूजा करो ।

न मातुः परं दैवतम् ।

माता से बढ़कर कोई देवता नहीं है ।

हमारे धर्म ग्रन्थों में माता का बहुत आदर किया गया है और उसे महत्त्व दिया गया है । माता सदा बालकों का—बच्चों का हित सोचती है । उनका ध्यान रखती है । बच्चों का निर्माण भी वही करती है । माता बच्चों से कितना प्यार करती है, कितना उसका कल्याण सोचती है, इस विषय में एक कहानी पढ़ी थी ।

एक बार एक पुत्र अपनी माँ के साथ रहता था । माँ अपने बच्चे की सभी सुख-सुविधाओं का ध्यान रखती थी । अपने कष्टों की चिन्ता न करके उसे पाल-पोस कर बड़ा किया । युवावस्था आने पर उसके पुत्र का एक कुलटा स्त्री से सम्बन्ध हो गया । उसने अपने जाल में इसे इस बुरी तरह फँसाया कि वह उसके कहने से अपनी माँ की भी उपेक्षा करने लगा । माँ भी उस स्त्री से अपने पुत्र के सम्पर्क को ठीक न समझती थी । उसने अपने लड़के को बहुत समझाया पर काम अन्धा होता है । वासना की आँधी मनुष्य के मस्तिष्क को विकृत कर देती है । एक दिन उस स्त्री ने उससे कहा—“मैं तुमसे तभी मिलूंगी जब तुम अपनी माँ का सिर काट कर मुझे दिखा दो ।”

लड़का तैयार हो गया । उसकी माँ अपने पुत्र की शुभकामना मन में लिए गहरी नींद में सो रही थी । उसने कुल्हाड़ी उठाई और उसके गले पर वार किया । एक ही वार से गर्दन अलग हो गई वह खुशी से गर्दन उठा कर तेजी से प्रेमिका को दिखाने के लिए चला । हड़बड़ाहट में दरवाजे की देहली से उठता पैर टकराया । वह गिरा । चोट लगी और कहते हैं कि उस समय भी उसकी माँ के निर्जीव मुख से ‘च् च् च् बेटा चोट तो नहीं लगी’ यह आवाज निकली । हो सकता है, इस कहानी में अतिशयोक्ति हो । पर भाव यह है कि माँ का अपने पुत्र से अनुलनीय स्नेह होता है । वह उसका हित और उन्नति चाहती है । वह ही बच्चों का निर्माण कर सकती है । आओ आज तुम्हें भगतसिंह और रामप्रसाद बिस्मल की माताओं का इतिहास सुनाएँ ।

शहीदे आजम भगतसिंह की माँ श्रीमती विद्यावती मोरवली की रहने वाली थी। उनके पिता प्रसिद्ध क्रांतिकारी थे। १८६८ ई० में आर्यसमाजी रीति से उनका विवाह हुआ। सितम्बर १९०७ ई० में भगतसिंह का जन्म हुआ। विद्यावती के पति और देवर भी देश सेवा में लगे हुए थे। संवत् १९२३ ई० में एक व्यक्ति ने उन्हें बताया था कि उनके पुत्र को 'तख्त' या 'तख्ता' में से एक मिलेगा। विद्यावती फाँसी होने से एक दिन पूर्व अपने बेटे से मिलीं तो कहा—'बेटा, हठ मत छोड़ना, एक दिन तो मरना ही है। पर मरना वह जिसे सारा संसार याद करे और रो उठे। मैं खुश हूँ कि मेरा पुत्र ऊँचे और अच्छे कर्मों के लिए बलिदान हो रहा है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि फाँसी तख्ते पर खड़ा होकर मेरा पुत्र 'इन्कलाब जिन्दाबद' के नारे लगाये।' २३ मार्च १९३१ ई० को भगतसिंह को फाँसी हुई तो वह रोई नहीं। भगतसिंह ने कहा था 'बेवे जी, रोना मत! ऐसा न हो कि आप पागलों की तरह रोती रहें। लोग क्या कहेंगे कि भगतसिंह की माँ रो रही है।' १९३१-१९३४ ई० तक वह घोर संकट में रहीं। १९३६-१९४० ई० में उनके दूसरे बेटे कुलतारसिंह और कुलवीर सिंह जेल चले गए। १९५१ ई० में उनके पति किशनसिंह दिवंगत हुए। २० अगस्त १९६५ ई० को भगतसिंह के अनन्य साथी बटुकेश्वरदत्त का निधन हो गया। दत्त की इच्छा-अनुसार उनका अन्तिम संस्कार फिरोजपुर में सतलज के किनारे वहीं किया गया जहाँ कभी भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव का संस्कार हुआ था। विद्यावती वहाँ उपस्थित थीं, चिता में आग लगते ही शोक विह्वल होकर कहने लगीं कि तुम चारों तो यहाँ इकट्ठे हो मुझे भी अपने पास बुला लो। जनवरी १९७३ ई० में पंजाब सरकार ने उन्हें 'पंजाब माता' के सम्मान से विभूषित किया। श्रीमती विद्यावती का निधन १ जून १९७५ ई० को ६८ वर्ष अस्वस्था में दिल्ली में हुआ। धन्य है, पंजाब माता तुने देश को भगतसिंह सा अनमोल रत्न दिया। तू, पंजाब माता नहीं, सम्पूर्ण भारतवासियों की माँ है। तेरे चरणों में हमारी सादर श्रद्धांजलि है।

अमर शहीद रामप्रसाद विस्मिल की माँ की कहानी सुनिए। विस्मिल ने जेल में आत्मकथा लिखी है। उसमें लिखा है, ग्यारह वर्ष की अवस्था में उनका विवाह मुरलीधर से हुआ था। विवाह के बाद उन्होंने पढ़ना सीखा। विस्मिल सहित उनके दो पुत्र और तीन पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। उनका एक पुत्र रमेश दवा के अभाव में टी० बी० रोग से पहले ही मर गया। उनकी पुत्रियों ने भी क्रांतिकारियों की सदा मदद की। रामप्रसाद विस्मिल ने अपनी माँ के बारे में लिखा है—'मेरी माता मेरे धर्म कार्यों और शिक्षा में मेरी बड़ी सहायता करती थीं। धार्मिक और देशभक्ति सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने को पैसे देती थीं। मेरी माँ मेरा उत्साह भंग नहीं होने देती थीं। जिससे बहुधा उन्हें

पिता जी की डाँट-फटकार सुनती पड़ती थी। मुझे जीवन में साहस, बल, देशभक्ति एवं बलिदान की प्रेरणा मिली वह मेरी माता और गुरुदेव सोमदेव सरस्वती की कृपा का परिणाम है। जब मैंने आर्यसमाज में प्रवेश किया माँ से वार्तालाप होता। यदि मुझे ऐसी माँ न मिलती तो मैं अति साधारण व्यक्ति की भाँति संसार चक्र में फँसकर जीवन निर्वाह करता।' माँ ने ही मुझे सत्यार्थप्रकाश के आधार पर—'गन्दे से गन्दा स्वदेशी राज्य अच्छे से अच्छे विदेशी राज्य से अच्छा है।' कहकर क्रान्तिकारी जीवन की प्रेरणा और शिक्षा दी। उन्होंने वैसी ही सहायता प्रदान की जैसे इटली के क्रान्तिकारी मेजिनी को उनकी माता ने की थी। विस्मिल ने आगे लिखा है—'माँ, महान् से महान् कष्ट में तुमने मुझे अधीर नहीं होने दिया। सदैव अपनी प्रेमभरी वाणी सुनाते हुए सान्त्वना देती रही। सदैव तुम्हारी दया की छाया में मैंने अपने जीवन में कोई कष्ट अनुभव नहीं किया। संसार में मेरी किसी भी भोग-विलास या ऐश्वर्य की इच्छा नहीं। केवल एक तृष्णा है कि एक बार तुम्हारे चरणों की सेवा करके अपने जीवन को सफल बना लूँ। किन्तु यह इच्छा पूर्ण होती नहीं दिखाई देती और तुम्हें मेरी मृत्यु का दुःखद समाचार सुनाया जायगा। माँ मुझे विश्वास है कि तुम यह समझकर धैर्य धारण करोगी कि तुम्हारा पुत्र माताओं की माता भारत माता की सेवा में अपने जीवन को बलिबेदी की भेंट कर गया और उसने तुम्हारी कोख को कलंकित नहीं किया, जब स्वाधीन भारत का इतिहास लिखा जाएगा तो किसी पृष्ठ पर उज्ज्वल अक्षरों में तुम्हारा भी नाम लिखा जाएगा।

विस्मिल को फाँसी का दण्ड सुनाये जाने के बाद एक दिन वे विस्मिल से मिलने गोरखपुर जेल में गईं। विस्मिल माँ को देखकर रो उठा। तो उन्होंने उस समय दृढ़ स्वर में कहा—'मैं तो समझती थी कि मेरा बेटा बहादुर है। जिसके डर से अंग्रेज सरकार काँपती है। मुझे पता न था कि वह मौत से डरता है। यदि तुम्हें रोकर ही मरना था तो व्यर्थ ही इस काम में आये।' विस्मिल ने कहा—'माँ, मृत्यु से मुझे जरा भी डर नहीं, जरा भी भय नहीं। मैं तो तुम्हारी श्रद्धा के वशीभूत होकर प्रेम के आँसुओं से तुम्हारे चरणों को धोना चाहता हूँ। माँ, तुम विश्वास करो मातृभूमि के लिए बलि होने में मुझे जो प्रसन्नता है, उसका वर्णन असम्भव है। यह श्रद्धा और प्रेम के आँसू थे।' इस दृश्य को देखकर जेल अधिकारी यह कहते हुए पाये गये कि वीर माता का पुत्र ही वीर हो सकता है। माँ अन्तिम दिन भी अपने पुत्र से मिलने गईं। उसके पिता भी उससे पहले मिल चुके थे और पितृमोह में अंग्रेजों से माफी माँगने और भविष्य में स्वतन्त्रता के किसी आन्दोलन में सम्मिलित न होने का वचन देने को कह चुके थे। रामप्रसाद विस्मिल भला यह कैसे स्वीकार करते। उस दिन जब माँ पहुँची तो फूट-फूटकर रोने लगी। रामप्रसाद विस्मिल हक्का-बक्का होकर देखते रह गये। सोचने लगे

कि क्या मेरी यह यही माँ है जो उस दिन मुझे रोने पर डाँट रही थी। आज रो रही है। माँ का रोना जब समाप्त हुआ तो विस्मिल ने गम्भीर भाव से पूछा—‘माँ, क्या तू भी पिताजी की तरह मुझे बचने के लिए क्षमा माँगने को कहने आई है। तूने तो मुझे सत्यार्थप्रकाश के आधार पर बलिदान की प्रेरणा दी। तूने मुझे बतलाया कि ‘गन्दे से गन्दा स्वदेशी राज्य अच्छे से अच्छे विदेशी राज्य से अच्छा है’ तो आज क्यों रो रही हो। तुम कहोगी तो मैं क्षमा माँग लूँगा। उस समय वीर माता ने कहा—‘बेटा, मैं इसलिए नहीं रो रही कि कल तुझे फाँसी हो जाएगी। यह तो वह दिन होगा जिस दिन मेरे दूध की शान बढ़ जाएगी। मुझे तो यह सोचकर रोना आ गया था कि कल जब तुझे फाँसी हो जाएगी तब जब दूसरी माताएँ अपने पुत्रों को देश की स्वतन्त्रता से लिए न्यौछावर कर रही होंगी उस समय मेरे पास दूसरा पुत्र न होगा जिसे मैं भी शान से देश के लिए न्यौछावर कर सकूँगी।’ धन्य है माँ ! इस भारत की स्वतन्त्रता की सच्ची नींव तुमने ही डाली है। हम भारतवासियों का शतशः प्रणाम स्वीकार करो।

महकते फूल

यशः श्रीः श्रयतां मयि ।—यजुर्वेद २६-४

मुझ में कीर्ति और वैभव हो। कैसे—

कुरुक्षेत्र के विशाल युद्ध क्षेत्र में चारों ओर शव ही शव थे, कहीं मनुष्य अन्तिम दम तोड़ रहे थे तो कहीं हाथी, घोड़े अन्तिम साँस ले रहे थे। इसी समय एक दीन ब्राह्मण इन लाशों को खोजता हुआ एक मृत प्रायः व्यक्ति के पास पहुँचा। ब्राह्मण बोला, दानवीर कर्ण की जय हो। मुँदी पलकें खोलते हुए कर्ण ने पूछा, ‘कौन हो तुम?’

एक गरीब ब्राह्मण।

क्या चाहते हो?

दानवीर से कोई क्या चाहता है, गरीब हूँ, स्वर्ण माँगने आया हूँ।

क्यों उपहास करते हो? आज कर्ण मृत्यु शय्या पर पड़ा, अन्तिम श्वास ले रहा है, उसके पास स्वर्ण तो दूर, एक कौड़ी भी नहीं है।

तो लौट जाऊँ?

‘लौट जाऊँ? कर्ण से धन प्राप्त किये बिना कोई लौट जाए? कर्ण के लिए कितनी कष्टदायक बात है। बे कातर हो गये और सोचने लगे, यह कैसी परीक्षा है?’

ब्राह्मण ने कहा—‘अच्छा कर्ण जा रहा हूँ। बड़ी आशा से आया था, खाली हाथ ही जा रहा हूँ।’

अचानक कर्ण को ध्यान आया और वे बोले, नहीं, ठहरो, यह पत्थर उठाओ।

ब्राह्मण ने कहा, दान के उपाय जुटाना दानी का ही काम है। मैं द्विज आपके पुण्य का भागी नहीं बनूँगा। यदि सामर्थ्य न हो तो लौट जाऊँ ?

‘नहीं, कर्ण में प्राण रहते, सामर्थ्य रहेगा ? वह घिसटते-घिसटते पत्थर के पास गये और उससे अपना स्वर्ण जटित दाँत तोड़कर उस ब्राह्मण को दे दिया।

यह था चरमदान—सम्पूर्ण दान। कहीं कोई मोह नहीं। धन्य है कर्ण। धन्य है उनका दान। उपनिषद् ने कहा है, ‘श्रद्धया देयम्-अश्रद्धया देयम्। श्रद्धा से दो, चाहे अश्रद्धा से दो।

२

भारत के अपने समय के प्रधान-मन्त्री चाणक्य का नाम इतिहास के पन्नों में स्वर्णक्षिरो में लिखने योग्य है। त्याग और तपस्या का उनका आदर्श यदि आज के सरकारी कर्मचारी, मन्त्री तथा अन्य लोग अनुसरण कर सकें तो उस समय हम बड़े गर्व से कह सकेंगे—

एतद्देश प्रसूतस्य,

सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्,

पृथिव्यां सर्वमानवाः।

एक घटना सुनिए—

एक दिन चाणक्य अपने साधारण से घर में बैठे थे। बाहर से आवाज आई। आवाज सुनकर उन्होंने कहा, ‘कृपया भीतर आ जाइए, आपका स्वागत है।

वह कोई साधु था। वह अन्दर आया और भोंपड़े की साधारण अवस्था को देखकर आश्चर्य चकित रह गया, थोड़े से बर्तन और थोड़े से कपड़े वहाँ विद्यमान थे। विष्णुगुप्त जो चाणक्य के नाम से विख्यात हैं उनके निवास में वैभव एवं विलासिता का नामो-निशान न था। भारत साम्राज्य के शक्तिशाली प्रधान मन्त्री का घर सादगी का अनुपम उदाहरण था।

चाणक्य ने अतिथि सत्कार किया और दोपहर का भोजन करने की प्रार्थना की।

उस आगन्तुक ने भोजन करना स्वीकार कर लिया।

चाणक्य उस साधु को भोजन कराने के लिए भोंपड़े के दूसरे भाग में ले गए। दो देवियाँ भोजन बनाने में व्यस्त थीं। एक चाणक्य की धर्मपत्नी और दूसरी माता थी।

भोजन देखकर तो साधु को अपार आश्चर्य हुआ। भोजन में चावल, कढ़ी और सब्जी थी। व्यञ्जन कोई भी न था।

दोनों ने चुपचाप भोजन किया। साधु ने भोजन के बाद आश्चर्य से पूछा कि तुम इतने बड़े साम्राज्य के प्रधानमंत्री और कर्त्ता-धर्त्ता हो तो इतनी गरीबी का जीवन क्यों व्यतीत करते हो ?

हल्की-सी मुस्कराहट के साथ चाणक्य बोले, 'मैं प्रजा की सेवा के लिए प्रधान मन्त्री हूँ। इसका अभिप्रायः यह नहीं कि मैं राज्य और प्रजा की सम्पत्ति को अधिकृत करके उसका उपयोग करूँ। यह भोंपड़ा भी मैंने स्वयं बनाया है।'

बालको, अपने देश के राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री, मन्त्रियों एवं अन्य नेताओं से चाणक्य की तुलना करो। देश में अकाल, सूखा तथा वस्तुओं का अभाव है पर सभी मन्त्री कुर्सियों के लिए छीनाझपटी कर रहे हैं। एक दूसरे को पटक रहे हैं। देश की जनता मिट्टी के तेल के अभाव, खाद्य-पदार्थों की कमी, सूखा एवं मूल्यवृद्धि से परेशान है। और नेता लड़ रहे हैं आदर्श का जामा पहनकर कुर्सी और गद्दी के लिए। क्या वह उनकी सम्पत्ति है या जनता की ?

चाणक्य की यह बात सुनकर साधु ने कहा, "इसका मतलब तो यह हुआ कि आप अपनी आजीविका के लिए स्वयं काम करते हैं ?"

चाणक्य ने कहा, "मैं भाष्य और ग्रन्थ लिखता हूँ यही मेरी आमदनी के स्रोत हैं मैं प्रतिदिन १२ घण्टे राज्य के लिए और ८ घण्टे अपना काम करता हूँ।"

चाणक्य आगे बोले प्रधानमन्त्री के रूप में जनता के सुख और शान्ति का ध्यान रखना ही मेरा कर्त्तव्य है। राज्य में न्याय पर अवलम्बित आनन्द और सुख व्याप्त रहे यही मेरी कामना है।'

इस पर साधु ने कहा, "आपकी बात सुन रहा हूँ मुझे एक बात याद आ गई। बात यह है कि पास के गाँव के लोगों ने मुझे यह बताया है कि वे लोग बड़े दुःखी हैं, क्योंकि रात को उनके कम्बलों को कोई चोर चुरा कर ले जाता है।'

चाणक्य यह बात सुनकर चिन्तित हुए। उन्होंने साधु को विदा किया और गाँव जाकर सब वृत्तान्त जाना। उन्हें कम्बल वापस दिलाने का आश्वासन देकर लौट आये। उन्होंने राजमहल से कम्बल मंगवाये और अपने घर में उन्हें रखवा दिया।

चोरों ने चाणक्य के यहाँ कम्बल जाते हुए देख लिये। वे रात को वहाँ पहुँचे। उन्होंने जब वहाँ देखा कि नये कम्बलों का एक ओर ऊँचा ढेर है और दूसरी ओर महामहिम चन्द्रगुप्त का प्रधान मन्त्री चाणक्य एक पुराने फटे हुए कम्बल को लपेटे हुए सो रहा है। उसकी माता और पत्नी भी फटे

पुराने चिथड़े लपेटे हुए चटाई पर पड़ी सो रही है। उन्होंने सोचा कि कोई व्यक्ति इतना निःस्वार्थ हो सकता है? और एक हम हैं जो दूसरों का कम्बल चुराते फिरते हैं बड़े शर्म की बात है।

दूसरे दिन गाँववालों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने अपने कम्बल अपने घर के दरवाजे पर पड़े पाये। चाणक्य को बड़ी प्रसन्नता हुई। और उन्होंने घोषणा करवा दी, “मौर्य साम्राज्य में एक भी चोर नहीं है।”

इस महान् पुरुष को यह भी पता न चला कि वास्तव में उनकी पवित्रता ने चोरों को ईमानदार बना दिया। आओ! हम भी चाणक्य का अनुसरण करें।

सुनो कहानी जीवन की

महर्षि दयानन्द

सुवीर्यस्य पतयः स्याम । ऋ० ६-८६-७

हम (सुवीर्यस्य) उत्तम पराक्रम के (पतयः) स्वामी (स्याम) हों।

बालको, इस सूक्ति का अर्थ है, हम पराक्रम के स्वामी हों। पराक्रम शून्य व्यक्तियों तथा जातियों के प्राप्त ऐश्वर्य भी विनष्ट हो जाते हैं और पराक्रमशील व्यक्ति अपने विनष्ट ऐश्वर्य पुनः प्राप्त कर लेते हैं। कायर मनुष्य सौ बार मरता है, वीर एक बार। डरपोक जीवन में डरता ही रहता है। पराक्रमी ईश्वर का भरोसा कर संसार का मार्गदर्शन करता है। ऋग्वेद ६।३६।४ में एक सूक्ति आई है—‘एको विश्वस्य भुवनस्य राजा’ वह परमेश्वर सब जगत् का, सम्पूर्ण संसार का राजा है। राजा का कार्य प्रजा का पालन, शिक्षण और रक्षण है। जब संसार का राजा हमारे साथ है तो किसी से डरना क्या?

स्वामी दयानन्द अमृतसर गये हुए थे। वहाँ उन्होंने सिखधर्म की कुछ बुराइयों का खण्डन किया। स्वामी दयानन्द को न तो सिखों से द्वेष था और न उनके प्रति कोई दुर्भावना थी। वे मानवता के पुजारी थे। उनके विशाल हृदय में छोटी-छोटी कोठरियाँ न थीं। वे असत्य, पाप, अधर्म और बुराई से घृणा करते थे, किसी मनुष्य और समाज से उन्हें घृणा न थी। इसी कारण उन्हें सन्मार्ग पर ले चलने की भावना से उन्होंने सिखधर्म की आलोचना की, परन्तु मतवादी असहिष्णु होता है। वह अपनी बुराइयों को भी बुराई कहलाना पसन्द नहीं करता है, अतः सिख अप्रसन्न हो गये। स्वामी जी के भक्तों को उनपर घातक प्रहार का खटका हुआ, अतः उनकी रक्षा के लिए कुछ भक्त रात्रि में उन्हीं के डेरे पर सोते थे। एक दिन स्वामी जी

को यह मालूम पड़ा कि निहँग सिख कहीं मुझे मार न डाले इसलिए कुछ आर्यजन रात को मेरे डेरे पर सोते हैं अतः उनका दाँव नहीं चल रहा है।

स्वामी जी ने आर्यों को बुलाकर कहा—‘हम अकेले ही रहेंगे। जिसकी आज्ञा का मैं पालन कर रहा हूँ। वह परमेश्वर मेरा रक्षक है। स्वामी जी अकेले रहे। उनका बाल भी बाँका नहीं हुआ।

सोरों नामक स्थान पर स्वामी जी ठहरे थे। प्रतिदिन उनका धर्मोपदेश हो रहा था। जनता शान्तभाव से दत्तचित्त होकर उनके वचनमृत का पान कर रही थी, इतने में एक हृष्ट-पुष्ट जाट मोटा-सोटा कन्धे पर धरे और क्रोध के मारे तमतमाता लाल चेहरा किये सभा को चीरता हुआ स्वामी जी के पास पहुँचा और क्रोध से कड़ककर बोला—‘अरे, तू ठाकुर-पूजा का खण्डन करता है। तू गंगा मैया की निन्दा करता है। तू हमारे देवताओं को बुरा-भला कहता है। झटपट बता तेरे किस अंग पर यह सोटा मारकर तेरा काम तमाम करूँ?’

सब लोग घबरा गये। स्वामी जी के जीवन के लिए घबराहट दिखाई देने लगी। पर, स्वामी दयानन्द पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा और वे मुस्कराते हुए बोले—‘अरे भले आदमी! तुम्हारे विचार में मेरा धर्मप्रचार करना अपराध है, तो इस दोष का दोषी मेरा मस्तिष्क है। इन अपराधों का दण्ड देना हो तो लो मेरे सिर पर सोटा मारकर दण्डित करो।’ इन शब्दों के साथ जब उन्होंने अपनी तेज भरी दृष्टि उसके मुख पर डालकर देखा तो वह फूट-फूट कर रोने लगा और उनके चरणों पर लोट-पोट होकर क्षमा माँगने लगा। स्वामी जी ने उसे समझाते हुए एवं सान्त्वना देते हुए कहा—‘प्यारे! तुमने मेरा कोई अपराध नहीं किया। तुम मुझे मारते तब भी कोई बात थी। अब यों ही क्यों रो रहे हो? जाओ, ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे।’ स्वामी विदेह ने ठीक ही कहा है—

ऐसा अपना शील बना ले,
पथर को जो मोम बना दे।

बालको, ऋग्वेद ६।१०।५ में एक पद है ‘रुचे भव’ इस सूक्ति का अर्थ है—‘शोभा के लिए होओ। शोभा के लिए होने का मतलब तो तुम समझते ही हो। फूल बन की, उपवन की, उद्यान की और जहाँ रहता है उस स्थान की शोभा बढ़ाता है अपने सौन्दर्य से आह्लादित करता है अपनी सुगंध से। इसी प्रकार तुम भी जीवन में शोभनीय और समादरणीय बनो। तुम जीवन में कभी संघर्षों से घबराना नहीं, संकटों से कभी डरना नहीं। तुम्हारा चेहरा सदा प्रसन्न रहे, हृदय शुद्ध भावनाओं की सुगन्ध से परिपूर्ण रहे। विरोध के समय हँसो। सबके प्रति स्नेह और सद्भाव का वर्ताव करो। शत्रु से घृणा न करो, उसके दुर्गुणों से घृणा करो।

एक बार स्वामी दयानन्द अमृतसर गये थे। वहाँ सनातनी पण्डितों से शास्त्रार्थ का समय निश्चित किया गया। स्वामी जी निश्चित समय पर सभास्थल पर पहुँच गये, परन्तु पण्डित लोग न आये। कुछ समय बाद सात-आठ पण्डित आये और उनके सामने बैठ गये। इतने में ही उनके चेलों ने चारों ओर से स्वामी जी पर ईंट-पत्थरों की वर्षा प्रारम्भ कर दी। स्वामी जी के अनुयायियों में क्षोभ उत्पन्न हो गया और पुलिस ने आकर उपद्रवियों को पकड़ लिया। पण्डित लोग भाग गये। भक्तलोग उपद्रवियों को दण्ड दिलाने पर तुले हुए थे। स्वामी जी ने विक्षुब्ध जनता को शांत करते हुए कहा—‘मद्य मदिरा से उन्मत्त जनों पर क्रोध नहीं करना चाहिए। हमारा काम एक वैद्य का है। उन्मत्त मनुष्य को चिकित्सा के लिए वैद्य उसे औषध देता है, उसको मारता पीटता नहीं है। निश्चय जानिए जो लोग मुझपर ईंट, पत्थर और धूल बरसा रहे हैं वे ही लोग मेरे बाद कभी आप पर पुष्प वर्षा करेंगे।’ इसके बाद एक भक्त ने कहा—‘आज दुष्टों ने आपपर धूल और पत्थर फेंके। आपका घोर अपमान किया।’ स्वामी जी ने कहा—‘परोपकार और परहित करते हुए अपने मानापमान और परनिन्दा का परित्याग करना ही पड़ता है। मैंने आर्यसमाज का उद्यान लगाया है, अतः मैं एक माली की तरह हूँ। पौधों की सेवा करते और उनमें खाद डालते-डालते राख मिट्टी का माली के सिर पर पड़ना आश्चर्य की बात नहीं। मुझपर राख-धूल चाहे कितनी पड़े मुझे इसकी कुछ भी चिन्ता नहीं, परन्तु वाटिका हरी-भरी बनी रहे और निर्विघ्न फले-फूले।’

यह है अपने जीवन को पुष्प के समान सुन्दर और सुगन्धित बनाना। यदि तुम भी अपने जीवन को ऐसा बना लोगे तो संसार तुम्हारी सुगन्ध से सुगन्धित हो जाएगा। श्री स्वामी विदेह ने ठीक कहा—

संसार यदि कँटीला है,

तो पुष्प वन के तू,

खिलता महकता मधु की,

सदा वृद्धि करता रह ॥

सुनो कहानी जीवन की

सरदार बल्लभभाई पटेल

मा भेर्मा संविक्थाः। यजु० १।२३

(मा) मत (भेः) डर (मा) मत (संविक्थाः) घबरा।

बालको, जीवन में निर्भयता का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। भय का कोई अस्तित्व नहीं। कल्पना इसे जन्म देती है, यह एक छाया है, मस्तिष्क का एक रोग है। भय नाम का दुनिया में न तो कोई व्यक्ति है,

वहाँ पर अँगोठी में सलाख गर्म हो रही थी। वैद्य जी बैठे थे। उन्होंने लड़के को बुलाकर फोड़ा देखा। फोड़ा देखने के बाद सलाख निकालते उसे देखते और फिर रख देते। चिन्ता के मारे भवेर भाई का बुरा हाल था। वे आँख बन्द करके लड़के के चोखने की बात सोच रहे थे। आखिर तो वे पिता थे। पिता के लिए अपना कष्ट, उतना कष्टदायक नहीं होता जितना अपनी सन्तान का होता है।

वैद्य जी की हिचकिचाहट और पिता जी की यह हालत देखकर लड़के ने वैद्य जी से कहा—‘वैद्य जी महाराज घबराते क्यों हैं? यदि आप यह सलाख लगाना चाहते हैं तो फोड़े पर लगाइये।’ यह सुनकर वैद्य जी कुछ समय के लिए सहम गये। परन्तु, वह बालक घबराया नहीं। उसने सलाख उठाई और कहा—‘आप डरते हैं। देखिए, इसे यों लगाना होगा...’ उसने फोड़ा हँसते-हँसते दाग दिया। उसके मुख से आवाज़ हुई, परन्तु वह स्थिर था। यह देखकर दोनों आदमी अचकचा गए। वैद्य जी ने भट से पट्टी की और धीरे-धीरे उनका फोड़ा ठीक ही हो गया। जानते हो यह बालक कौन था? यह बालक भारत के स्वतन्त्रता युद्ध का योद्धा, कर न देने के आन्दोलन का संचालक, महात्मा गाँधी का भक्त, उनके शब्दों में भारत का सरदार—सरदार बल्लभभाई पटेल। बालको, सरदार पटेल की भाँति जीवन में कठिनाइयों से घबराना नहीं। बचपन में बहादुरी के साथ अपने को गर्म सलाख से दागने वाला यह बालक जीवन में कठिनाइयों से कैसे जूझता रहा और कैसे सफल हुआ? यह इतिहास तुम उनके जीवन चरित्र से जान सकोगे? ‘योगी’ कवि के शब्दों में याद रखो—

पग पग काँटे रोड़े पत्थर,

पल पल महायुद्ध गर्जन स्वर।

बस बिना सहारे इकले ही बढ़ना

करते युद्ध निरन्तर

चलना सरल नहीं इस पथ पर।

नहीं किसी पर तुम हो निर्भर,

आओ अपने घर से बाहर

इस पथ के यात्री चलते हैं

सब उठा उठा अपना बिस्तर

चलना सरल नहीं इस पथ पर।

इस पथ पर पग-पग जीवन स्वर

स्वागत उसका जो आये नर।

लानत, मांगे जो कि सहारा

यहाँ किसी से फैलाकर कर

चलना सरल नहीं इस पथ पर।

अन्धविश्वासों में मत फँसो

ऋतस्य पथा प्रेत ।—यजु० ७-४५

सत्य के पथ पर चलो ।

अहमनृतात्सत्यमुपैमि ।—यजु० १-५

मैं असत्य से बचकर सत्य के पथ पर जाता हूँ ।

कृतं वोचे नमसा ।—ऋ० ४-५-११

मैं नमस्कार के साथ, शिष्टतापूर्वक, विनयपूर्वक, शालीनता के साथ (ऋतं) सत्य (वोचे) बोलता हूँ ।

बालको, सत्यवादी बनो । सत्य से बढ़कर दूसरा धर्म नहीं, मन । वचन और कर्म से सत्य का आचरण करना चाहिए । तुम स्वयं सत्य बोल सकते हो पर बुद्धि द्वारा सत्य और असत्य की पहचान करके सत्य के अनुसार चलना और आचरण करना भी जीवन की सफलता के लिए आवश्यक है । जीवन के प्रत्येक कार्य में बुद्धि का उपयोग आवश्यक है । बुद्धि ईश्वर प्रदत्त आत्मा का दीपक है । इस दीपक के प्रकाश को धुँधला न होने देना, इस प्रकाश की परिधि से दूर न जाना । बुद्धि द्वारा सत्य की दीप्ति फैलाओ । बुद्धि के बिना मनुष्य अन्धविश्वास में फँस जाएगा । हमेशा बुद्धि सम्मत कार्य करो । अन्धविश्वास कैसे फैलता है, एक कहानी इस विषय में सुनाता हूँ । सुनो—

एक आदमी चोरी करता पकड़ा गया । न्यायाधीश ने उसे नाक काटने की सजा दी । जब उसकी नाक काटी गई, तब वह धूर्त नाचने, गाने और हँसने लगा । लोगों ने पूछा कि तू क्यों हँसता है ? उसने कहा कि कुछ कहने की बात नहीं । लोगों ने कहा, क्यों, क्या बात है, उसने कहा कि मेरे सामने साक्षात् चतुर्भुज नारायण खड़े हैं । मैं उन्हें देखकर बड़ा प्रसन्न हूँ इसलिए नाच-गाकर अपने को अहोभाग्य समझ रहा हूँ । लोगों ने कहा, हमको क्यों नहीं उनका दर्शन होता है ? वह बोला, नाक की आड़ हो रही है । यदि नाक कटा डालो तो नारायण दीखने लगेंगे । उनमें से किसी मूर्ख ने सोचा कि भले ही नाक कट जाए पर भगवान् का दर्शन हों जाए तो इससे बढ़कर सौभाग्य क्या हो सकता है ? उसने कहा मेरी भी नाक काटो और नारायण दिखलाओ । उसने उसकी नाक काट दी और कान में कहा कि अब तो नाक कट ही गई है, नारायण क्या दीखेंगे, तुम भी मेरी तरह नाचो, गाओ । वह भी वैसे ही कूदने लगा । इसी प्रकार एक के बाद दूसरे नाक कटवाते गये और हँसी न उड़े, इसलिए नाचने, गाने लगे, धीरे-धीरे उनकी संख्या हजारों की हो गई और उन्होंने अपने सम्प्रदाय का नाम रखा, 'नारायणदर्शी' । जब वहाँ के राजा ने यह सुना तो उसने भी उनके मुखिया को

बुलाकर कहा, यदि तुम्हें नारायण दीखता है तो हमें क्यों नहीं दीखता ? वह बोला, जब तक नाक है तब तक वह नाक की ओट में होने से नहीं दीखेगा । जब नाक कट जाएगी तो वह दीखने लगेगा । राजा भी उसके चक्कर में आ गया । उसने पण्डित बुलवाया । मुहूर्त निकाला गया । ज्योतिषी ने कहा, महाराज दशमी के दिन प्रातः आठ बजे नाक कटवाने का मुहूर्त है । धन्य थे ज्योतिषी जी महाराज भी कि उनके पत्रे में नाक कटवाने का भी मुहूर्त निकल आया ।

यह सब बातें एक वृद्ध दीवान को न जँची । उस वृद्ध ने वर्तमान दीवान से कहा कि वे धूर्त हैं । तू मुझको राजा के पास ले चल । वहाँ उसने राजा से कहा सुनिए, महाराज ! ऐसी शीघ्रता में बिना सोचे-समझे काम नहीं करना चाहिए । तर्क और बुद्धि से सोचे बिना, सत्य और असत्य की पहचान किये बिना कार्य करने से हानि होती है, बाद में पश्चात्ताप होता है, राजा ने कहा, क्या ये हजारों मनुष्य झूठ बोल रहे हैं ?' दीवान बोला, बुद्धि से परीक्षा किये बिना सत्यासत्य का निर्णय नहीं हो सकता । मैं वृद्ध हूँ । घर बैठा रहता हूँ और जीवन भी थोड़े दिन का है, इसीलिए मैं पहले परीक्षा कर लूँ । राजा मान गया । उसके साथ दो हजार सैनिक भी कर दिये गये । राजा, दीवान, सब कर्मचारी और सैनिक यथा स्थान पहुँचे । उनको देखकर सभी नकटे नाचने कूदने लगे । उनके महन्त जिसकी सबसे पहले नाक कटी थी, से राजा ने कहा—आज हमारे दीवान जी को नारायण का दर्शन कराओ । उसने कहा अच्छा और यथा समय पैना चाकू ले, नाक काट थाली में डाल दी और दीवान जी की नाक से रुधिर की धार छूटने लगी उनका मुख मलिन हो गया ।

उस महन्त ने उसके कान के पास जाकर मन्त्रोपदेश किया कि 'महाराज कटी हुई नाक अब वापस आने से रही अतः ऐसा ही करो जिससे लोग हँसी न करें । दीवान जी अँगोछा ले, नाक की आड़ में लगा राजा के पास पहुँचे । राजा के कान के पास जाकर कहा, कुछ भी नहीं दीखता । वृथा इस दुष्ट ने सहस्रों मनुष्यों की नाक कटाई । इसको पकड़वाकर कठिन दण्ड देना चाहिए । सुनकर राजा ने सब नकटों को आजीवन कैद की सजा दी और उस महात्मा को गधे पर चढ़ा दुर्दशा के साथ मार डाला, इसके गले में फटे जूतों का हार डलवा दिया, सारे नगर में घुमाया, लोगों ने उस पर थूका । धूल और राख डाली, जूतों से पिटाया, कुत्तों से नुचवाकर मरवा डाला । जिससे भविष्य में दूसरा ऐसा काम न करे ।

हमारा देश अन्धविश्वासों और चमत्कारों के चक्कर में फँस जाता है । आज कल इस देश में भगवानों, बाबाओं और ईश्वरों की भरमार हो गई है । सन्तोषी माता के नाम पर पूजाएँ चल रही हैं और बड़े-से-बड़े शिक्षित लोग भी उससे अपनी मनोकामनाएँ पूरी करने की आशा कर रहे

हैं। जयगुरुदेव के नाम की धूम मची हुई है। बाल योगेश्वर विदेशों में भी फैल रहे हैं, ब्रह्मकुमारियों का आकर्षण बढ़ रहा है, आनन्दमार्गियों के कारनामे तो खुल ही चुके हैं। साईबाबा के चमत्कारों ने जो एक जादूगर के खेल से अधिक नहीं अपना प्रभाव बढ़े से बढ़े मन्त्रियों, अधिकारियों और प्रोफेसरो पर भी डाल रखा है, ईसाईयों द्वारा प्रेरित 'हेलो मेरी' के नाम पर चमत्कारी रोटी ने कुछ दिन अच्छा मनोरंजन किया। साई बाबा ने शहद और राख के खेल दिखाये। सब की नकटों की हालत है। एक फँसता है, दूसरे को फँसाता है। ऐसों को वेद कहता है—'ऋतस्य पथा प्रेत' सत्य के मार्ग पर चलो। चीन के एक सन्त कन्फ्यूशियस ने उत्तम पुरुष कौन है, बताते हुए लिखा है। वह कि जो अपनी असफलता के लिए दूसरे को दोषी नहीं ठहराता, न वह अपने काम में असफल होने वालों की हँसी उड़ाता है। वह कि जो किसी को अपने अन्धविश्वासों की कसौटी पर नहीं कसता, न अपने बने हुए विचारों के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति के नाम का मूल्यांकन वह उसके गुणों के अनुसार करता है वह कि जो सत्य समझने की कोशिश करता है। स्वामी विदेह के शब्दों में कहूँगा—

बोलो सादर सच्ची बात।

मीठी प्यारी अच्छी बात।



अखिल भारतीय वैदिक सिद्धान्त प्रचारिणी सभा द्वारा संचालित

सिद्धान्त-प्रवीण

परीक्षा सर्वथा निःशुल्क स्वाध्याय एवं अनुभव के आधार पर पत्राचार विधि से घर बैठे उत्तीर्ण कर महर्षि दयानन्दचित्र युक्त अत्यन्त सुन्दर व आकर्षक उपाधि पत्र प्राप्त करें।

परीक्षा में पुस्तकों का प्रयोग वर्जित नहीं

नोट—नियमावली प्रार्थार्थ १.०० के डाक टिकट भेजें।

आर्यसमाज के उत्सवों, पर्वों एवं धर्म-प्रचार के अन्य कार्यक्रमों में उपदेशार्थ निम्न पते पर सम्पर्क करें।

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

सभाध्यक्ष

पं० सत्यार्थी 'महोपदेशक'

संचालक परीक्षा विभाग

अ० भा० वैदिक सिद्धान्त प्रचारिणी सभा गरवाड़ा

व्हाया नीमच म० प्र० ४५८:२२६

षड्दर्शनम्

[भारतीय छह दर्शन मूल एवं अनुवाद-सहित एक ही जिल्द में]

अनुवादक

आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य-साधना में रत

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वैदिक साहित्य में दर्शनों का विशेष महत्त्व है। वे वेदों के उपाङ्ग हैं। वेद में ईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, मोक्ष, योग, कर्मसिद्धान्त, यज्ञ आदि का बीजरूप में वर्णन है, दर्शनों में इन्हीं विचार-बिन्दुओं पर विस्तृत विवेचन है।

- ० यदि आप जानना चाहते हैं कि दर्शनों में क्या है,
- ० यदि आप जानना चाहते हैं कि दर्शनों में विरोध नहीं है,
- ० यदि आप जानना चाहते हैं कि यज्ञों का प्रकार क्या है,
- ० यदि आप जानना चाहते हैं कि भारतीय दर्शनों की विशेषताएँ क्या हैं तो

इस 'षड्दर्शनम्' को पढ़ जाइए। संसार के इतिहास में प्रथम बार छहों दर्शन अनुवाद-सहित एक जिल्द में छपे हैं। उत्तम कागज, दिव्य मुद्रण, आकर्षक गैट-अप, अन्त में सूत्र-सूची, आरम्भ में विस्तृत भूमिका।

मूल्य : ३५ रुपये

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार लिखते हैं—

लेखक ने छहों दर्शनों को सरल हिन्दी में लिखकर अव्ययनशील जिज्ञासु जनता का बड़ा उपकार किया है।

आचार्य शिवपूजनसिंह जी कुशवाहा लिखते हैं—

आपने छह दर्शनों का आर्यभाषा में अनुवाद करके आर्यजगत् पर एक महान् उपकार किया है। 'मीमांसा-दर्शन' पर तो पूर्ण भाष्य किसी भी आर्य विद्वान् का नहीं था, आपने इस कमी को भी पूरा कर दिया। पुस्तक की छपाई-सफाई आकर्षक है।

श्री भवानीलाल जी भारतीय, सम्पादक 'परोपकारी' लिखते हैं—

एक ही जिल्द में दर्शन के मूल वाङ्मय को प्रस्तुत करना सराहनीय है।

आचार्य रमेशचन्द्र जी एम० ए०, सम्पादक 'आर्यमित्र' लिखते हैं—

गम्भीर चिन्तनशील विद्वान् और साधारण प्रारम्भिक विद्यार्थी, दोनों अपनी योग्यता और मापदण्ड के अनुसार व्याख्याकार के प्रति आभारी रहेंगे।

पं० श्रानन्दप्रिय जी लिखते हैं—

स्वाध्यायशील व्यक्तियों के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी एवं मूल्यवान् सिद्ध होगा।

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

लेखक : वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति । प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली । पृ० सं० २४८ । मूल्य १५.००

सुधी व्याख्याता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में पाठक की मानस-भूमि को उर्वरा बनाने के लिए एक विस्तृत भूमिका दी है । मुख्य ग्रन्थभाग को कई गुच्छकों में बाँटा है जिससे सारे ग्रन्थ में एक सुसंगति और क्रम दृष्टिगोचर होता है । वेद, ईश्वर, सृष्टि, उपासना, स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और राष्ट्र-निर्माण खण्ड के साथ ही प्रकीर्ण खण्ड भी संकलित है । इहलोक-परलोक, भुक्ति और मुक्ति, समष्टि और व्यष्टि, व्यक्ति और राष्ट्र, इन सबके प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण जो वेद का प्रतिपाद्य है, उसके पोषक विविध मन्त्र सूक्त-अन्वयार्थ और सरल-स्पष्ट भाषा में व्याख्या-सहित मननशील स्वाध्याय-प्रेमियों के लिए प्रस्तुत हैं ।

जो लोग वेदों के नाम से विदकते हैं, वे भी यदि इस ग्रन्थ को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो यह और ऐसे अन्य ग्रन्थ उनके नित्य स्वाध्याय की सामग्री बन जाएँगे । यह बात नये अध्येता के सामने भी स्पष्ट हो जाएगी कि वेदों में हमारे दैनन्दिन जीवन को सँवारने की प्रभूत सामग्री विद्यमान है । इसमें आपको पद, अर्थ, रस और संगीत का चमत्कार भी दृष्टिगोचर होगा । 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' की एक स्पष्ट झलक आपको इन मन्त्रों में मिलेगी ।

प्रबुद्ध लेखक ने मन्त्रों के चयन और गुच्छकों के रूप में उनके विन्यास में चतुर मालाकार की कला-दृष्टि का परिचय दिया है, लोकमंगल की भावना और आध्यात्मिक चेतना के सतत विकास पर लेखक की पैनी दृष्टि स्थिर रही है । सच्चिदानन्द के सान्निध्य में वास चाहने वालों के लिए सुवर्ण, सुरूप और सुवासयुक्त ये पुष्प-गुच्छ पाथेय रूप हैं ।

—सन्तराम वत्स्य

श्री सत्यव्रतजी सिद्धान्तालंकार कृत
दो अलभ्य ग्रन्थ पुनः छप गये
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य : ५०.००

और

ब्रह्मचर्य-सन्देश

मूल्य : १५.००

ये ग्रन्थ बहुत दिन से अनुपलब्ध थे । जनता की माँग
पर पुनः मुद्रण कराया है ।

निराशा से बचने के लिए शीघ्र संग्राह्य ।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

पाठकों के विशेष आग्रह पर

वर्षों बाद पुनः प्रकाशित

श्रीमद्दयानन्द चित्रावली

यह पुस्तक स्वामी दयानन्द जी के तपोनिष्ठ जीवन की एक अनूठी भाँकी प्रस्तुत करने के साथ, उनके जीवन की कुछ अविस्मरणीय घटनाओं के इकरंगे और बहुरंगे चित्रों से भी सुसज्जित है।

छपाई मोटे अक्षरों में और बढ़िया कागज पर कराई गई है। अधिक प्रतियाँ मँगवाने पर अधिक कमीशन दिया जाएगा।

मूल्य : आठ रुपये मात्र

खुशी, त्यौहार, विवाह अथावा यादगार के तौर पर

उपहार

ही देना है तो आर्ट-पेपर पर छपा 'सत्यार्थप्रकाश' दीजिये।

मूल्य : एक सौ रुपये

आपने गीता के अनेक भाष्य पढ़े होंगे। यदि आप गीता का वास्तविक मर्म जानना चाहते हैं, यदि गीता का रसायन करना चाहते हैं तो एक बार श्री सत्यपाल विद्यालंकार कृत

गीता भाष्य

का पाठ कर जाइए।

नयनाभिराम छपाई। मूल्य केवल ६ रुपये।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

सत्यार्थप्रकाश

कई महत्त्वपूर्ण परिशिष्टों से युक्त एक संग्रहणीय संस्करण
आठ परिशिष्ट

१. प्रथम समुल्लास में आए ईश्वर के १०८ नामों की अकारादि क्रम से सूची ।
२. सत्यार्थप्रकाश में व्याख्यात पारिभाषिक शब्दों की अकारादि क्रम से सूची ।
३. सत्यार्थप्रकाश में निर्दिष्ट व्यक्तियों, स्थानादि की अकारादि क्रम से सूची ।
४. सत्यार्थप्रकाश के १३वें समुल्लास में भाषा में निर्दिष्ट विभिन्न शब्दों का रोमन लिपि में निर्देश (जैसे हारून का Haron) ।
५. चतुर्दश समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतों के अनुवाद के सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र देहलवी का वक्तव्य ।
६. सत्यार्थप्रकाश की आधार-ग्रन्थ-सूची ।
७. सत्यार्थप्रकाश पर उठी शंकाओं का समाधान चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव विद्यालंकार द्वारा ।
८. अन्त में अकारादि क्रम से प्रमाण-सूची ।

विशेषताएँ

१. यह शताब्दी-संस्करण पं० भगवद्दत्त रिसर्च-स्कॉलर द्वारा महर्षि की मूल प्रति से सम्पादित है । सत्यार्थप्रकाश के इतिहास पर पं० भगवद्दत्त जी की एक विवेचनापूर्ण भूमिका इस शताब्दी-संस्करण में दी गई है ।
२. प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख ।
३. अनुच्छेदों (पैराग्राफ) पर क्रम-संख्या ।
४. आरम्भ में एक विस्तृत विषय-सूची समुल्लास-अनुसार ।
बढ़िया कागज । १६ प्वाइंट के मोनो टाइप में छपा । सुन्दर नयनाभिराम छपाई । मशीन द्वारा मजबूत जुजबन्दी की सिलाई । सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द । स्वर्णाक्षरों में पुस्तक का नाम । मूल्य रु० २५.०० ।

सत्यार्थप्रकाश के इस संस्करण का आर्ट पेपर पर छपा राज-
संस्करण भी तैयार है । बहुत ही आकर्षक प्लास्टिक कवर के
साथ कपड़े की हरी जिल्द ।

विवाह आदि के अवसर पर भेंट देने योग्य । मूल्य १०१.००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण

प्रायः जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य-साधना में संलग्न,

रामायण के समालोचक एवं मर्मज्ञ

लेखक—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

- यदि आप अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास की भाँकी देखना चाहते हैं,
- यदि आप मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के जीवन का अध्ययन करना चाहते हैं,
- यदि आप प्राचीन राज्यव्यवस्था का स्वरूप देखना चाहते हैं,
- यदि आप रामायण के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्त धारणाओं का समाधान पाना चाहते हैं,
- यदि आप भ्रातृ-प्रेम, नारी-गौरव, आदर्श सेवक, आदर्श मित्र, आदर्श राज्य, आदर्श पुत्र के स्वरूपों का अवलोकन करना चाहते हैं,
- यदि आप रामायण का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते हैं,

तो यह रामायण पढ़ जाइए । सैकड़ों टिप्पणियों से समलंकृत सम्पूर्ण रामायण
६००० श्लोकों में समाप्त । ५०.००

आचार्य शिवपूजनसह कुशवाहा लिखते हैं—

“सम्पादन और टीका-टिप्पणी लौह-लेखनीधारी स्वामी जगदीश्वरानन्द द्वारा हुई है। पं० आर्यमुनि, पं० राजाराम शास्त्री, पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार ने भी रामायण की टीका क्षेपक-रहित प्रकाशित की थी । उनमें पादटिप्पणियों का अभाव था । इस टीका में टिप्पणियों की भरमार है जिनसे विषय का प्रतिपादन भलीभाँति हो जाता है ।” स्वामी जगदीश्वरानन्द जी का परिश्रम, स्वाध्याय, विद्वत्ता प्रत्येक अध्याय में दृष्टिगोचर होते हैं ।”

श्री अमर स्वामी जी महाराज (भूतपूर्व ठा० अमरसिंह जी महाराज) लिखते हैं—

“रामायण को देखकर ऐसा लगा कि इसमें कोई आवश्यक बात छूटी नहीं तथा कोई अनावश्यक और अतर्कल बात रहने नहीं पाई । टिप्पणियों तथा शंकाओं के समाधानों ने तो सोने में सुगन्ध उत्पन्न कर दी है ।”

महात्मा नारायण स्वामी जी की अनुपम पुस्तक

कर्तव्य-दर्पण

छपकर तैयार, पूरी कपड़े की जिल्द, मूल्य ४.००

एक संग्रहणीय एवं पठनीय ग्रन्थ

प्रार्थनालोक

[व्याख्याकार : परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती]

प्रातःकाल उठकर पाठ करनेवाले 'प्रातरग्नि' आदि ५ मन्त्रों की सुललित व्याख्या।

— ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना के 'विश्वानिदेव' आदि ८ मन्त्रों की मनोहारी व्याख्या। रात्रि को सोते समय पठनीय 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' वाले छह मन्त्रों की हृदयहारी व्याख्या।

इस प्रकार पुस्तक में १९ मन्त्रों की अति मनोहर, सरल एवं विद्वत्तापूर्ण व्याख्या है। पाठक पढ़ते-पढ़ते भाव-विभोर हो जाता है। पढ़ते-पढ़ते मन्त्रों का अर्थ हृदयङ्गम हो जाता है।

उत्तम छपाई, सुनहरी जिल्दे। मूल्य केवल १५.०० रुपये।

वैदिक सूक्ति-सुधा

वेद कठिन नहीं हैं, सरल हैं, यदि आप वेद पढ़ना चाहते हैं, वैदिक ज्ञान का रसास्वादन करना चाहते हैं, अपने पुत्र-मुत्रियों को वेद से परिचित कराना चाहते हैं तो स्वयं पढ़िये और अपने बच्चों के हाथ में इन ग्रन्थों को दीजिए—

यजुर्वेद सूक्ति-सुधा ३.०० रुपया

सामवेद सूक्ति-सुधा ३.०० "

अथर्ववेद सूक्ति-सुधा ५.०० "

ऋग्वेद सूक्ति-सुधा—शीघ्र छपेगी।

सभी ग्रन्थों की छपाई अत्युत्तम है।

सभी पुस्तकों के व्याख्याता हैं आपके जाने-माने विद्वान् परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

गोविन्दराम हासानन्द

वैदिक साहित्य के प्रमुख प्रकाशक व विक्रेता

४४०८ नई सड़क, बिल्ली-११०००६

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८, नई सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।